बौद्ध अर्थशास्त्र

ई.ऍफ़.शूमाकर
(हिन्दी अनुवाद: अमित बसोले)

"उचित जीविका" गौतम बुद्ध के अष्टपहलू पथ का एक अंग है। इसलिए ज़ाहिर है कि बौद्ध अर्थशास्त्र जैसी कोई चीज़ होनी चाहिए।

बौद्ध देश अक्सर कहते हैं कि वह अपनी विरासत से एक निष्ठ रहना चाहते हैं। जैसे कि बर्मा : "नए बर्मा को धार्मिक मूल्यों और आर्थिक विकास के बीच कोई संघर्ष नहीं नज़र आता। आत्मिक या मानसिक स्वास्थ्य और भौतिक सेहत एक दुसरे के दुश्मन नहीं बलकी नैसर्गिक मित्र हैं।"[1] या: "अपनी परमपरा के धार्मिक और आत्मिक मूल्यों का और आधुनिक प्रौद्योगिकी के फलों का हम सफलतापूर्वक मिलन कर सकते हैं।"[2] या:"हम बर्मा-वासियों का यह पवित्र कर्तव्य के हम अपने सपनों और कर्मों को और अपने धर्म को एक दुसरे के अनुरूप बनाएं। यह हम सदा करते रहेंगे।"[3]

लेकिन फिर भी येही देश यह भी मान कर चलते हैं वह अपने आर्थिक विकास के कार्यक्रम आधुनिक अर्थशास्त्र के अनुसार ढाल सकते हैं और तथाकथित विकसित देशों से आधुनिक अर्थशास्त्रियों को उपदेश देने बुलाते हैं ताकि वे आर्थिक नीतियों कि रचना कर सकें और विकास के लिए कोई भव्य डिजाईन तैयार कर सके फिर वह पंचवार्षिक योजना हो या कुछ और इस प्रकार की चीज़ हो। जैसे आधुनिक भौतिकवादी जीवनशैली ने अपने एक आधुनिक अर्थशास्त्र की इजाद की है, वैसे ही बौद्ध जीवनशैली को बौद्ध अर्थशास्त्र की आवश्यकता हो सकती है, ऐसा किसी को नहीं लगता है।

खुद अर्थशास्त्री, अन्य विशेषज्ञों की तरह, आमतौर पर एक किस्म के दार्शनिक अंधेपन का शिकार होते हैं, और यह मान कर चलते हैं कि उनका विज्ञान निरपेक्ष, सम्पूर्ण और सदा कायम सत्य उजागर करने वाला विज्ञान है। कुछ (अर्थशास्त्री) इतना तक कह देते हैं की आर्थिक नियम उसी तरह "तत्वमीमांसा" (मेटाफिजिक्स) या मूल्यों (वैल्यूस) से मुक्त हैं जैसे के गुरुत्वाकर्षण। लेकिन हमे ज्ञानमीमांसा (मेथोदोलोगी) के इन झगडों में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। बल्कि आईये कुछ बुनियादी तत्वों को लें और देखें आधुनिक अर्थशास्त्री बनाम बौद्ध अर्थशास्त्री के नज़रिये से वह कैसे भिन्न नज़र आते हैं।

मानव श्रम यह धन-दौलत का एक मूल स्रोत है इसमे कोई दो राय नहीं है। अब, आधुनिक अर्थशास्त्री को यह पढाया गया है कि श्रम या काम एक आवश्यक बुराई (नेसेसरी ईविल) है, इससे ज्यादा कुछ नहीं है। मालिक के नज़रिये से देखा जाये तो यह सिर्फ एक और चीज़ है जिस पर उसे खर्च करना होगा और जिसे वह न्यूनतम रखना चाहता है, या फिर स्वचालन (ऑटोमेशन) से

पूरी तरह मिटाना चाहता है। और मजदूर के नज़रिये से वह [श्रम] एक उनुपयोगिता (दिस-युटिलिटी) है; श्रम करना यानी चैन और आराम का त्याग करना और वेतन इसी त्याग का मुआवजा है। इसलिए मालिक के नज़रिये से आदर्श है मजदूरों के बगैर उत्पादन और मजदूर के नज़रिये से आदर्श है काम के बगैर आय।

इन रवैयों के परिणाम सिद्धांत और कार्यप्रणाली दोनो ही मैं बहुत व्यापक या दूर-गामी हैं। अगर श्रम के बारे में आदर्श यह है के उसे खत्म ही कर दिया जाये, तो कार्य-भार कम करने वाला हर उपाय अच्छा होगा। इसका सबसे प्रबल तरीका, स्वचालन को छोड़ कर, कथित "श्रम का विभाजन" (डिविझन ऑफ लेबर) है, जिसका प्रतिष्ठित नमूना वह पिन कारखाना है जिसकी ऐडम स्मिथ ने अपनी किताब "वेल्थ ऑफ नेशंस" ("राष्ट्रों कि सम्पत्ति") मैं स्तुति की थी।[4] यह वह साधारण विशेषज्ञता की बात नहीं है जिसका मानवता ने अनगिनत समय से आचरण किया है बल्कि उत्पादन के हर सम्पूर्ण क्रिया को छोट-छोटे हिस्सों में विभाजित करना है जिससे अंतिम उत्पाद तेज़ रफतार से बनाया जा सके और जिसमे किसी एक व्यक्ति को बिल्कुल निरर्थक और कई बार अकुशल तरीके से हाँथ-पैर चालाने के अलावा कुछ न करना पड़े।

बौद्ध नज़रिये से श्रम के तीन कार्य हैं: इंसान को अपनी योग्यताएं इस्तेमाल करने और विकसित करने का मौका देना; लोगों के साथ मिल कर काम करने के ज़रिये अपने अहम-केन्द्रीयता पर विजय पाना; और उचित अस्तित्व के लिए ज़रूरी वस्तुएं तथा सेवाएँ पैदा करना। और एक बार फिर यह नज़रिया अपनाने के परिणाम अनंत हैं। श्रम को इस तरह से आयोजित करना कि वह श्रमिक के लिए अर्थहीन, उबा देने वाला और चिढा देने वाला बन जाये यह तो आपराधिक ही होगा; ऐसा करने का मतलब होगा के हमे मनुष्य से ज्यादा वस्तुओं की चिंता है, यह एक दुष्ट करुना-हीनता होगी और ऐसा करना यह दिखला देगा कि हमे इस सांसारिक अस्तित्व के सबसे आदिम पहलू से आत्मा को नष्ट करने कि क्षमता रखने वाला मोह है। उतना ही, श्रम के बजाये फुरसत या आराम पाने का प्रयास करना मनुष्य के अस्तित्व के एक मौलिक सत्य को पूरी तरह से ग़लत समझना होगा, और वह सत्य यह है कि श्रम और आराम एक ही जीवन प्रक्रिया के एक दूसरे को पूरा करने वाले पहलू हैं। श्रम के मज़े को और आराम के आनंद को नष्ट किये बगैर इन्हें अलग नहीं किया जा सकता।

इसलिए बौद्ध नज़रिये से यंत्रीकरण दो किस्म का होता है जिन्हें हम बिल्कुल अलग रखना चाहेंगे: एक जो मनुष्य की कुशलता और शक्ति को बढाता है और एक जो मनुष्य के काम को एक यन्त्र-रुपी दास को दे देता और मनुष्य को इस दास की सेवा करने के लिए छोड़ देता है। इन दोनो के बीच फर्क कैसे किया जाये? आनंद कुमारस्वामी, एक ऐसे सज्जन जो समान निपुणता से आधुनिक पश्चिम और प्राचीन पूर्व के बारे में बात कर सकते हैं, कहते हैं, "शिल्पकार खुद हमेशा ही यन्त्र (मशीन) और औज़ार (टूल) में का बारीक फर्क बता सकता है, अगर उसे ऐसा करने दिया जाये। कार्पेट लूम एक औज़ार है, जो धागों को तान कर रखता है ताकि जुलाहा अपनी उँगलियों से बुनाई कर सके मगर पॉवर-लूम एक यन्त्र है जिसकी संस्कृतियों को नष्ट कर पाने की क्षमता

इसमे है के यह यन्त्र वही काम करता है जिसे मनुष्य को करना आवश्यक है।"[5] इसलिए यह साफ है कि बौद्ध अर्थशास्त्र आधुनिक भौतिकवादी अर्थशास्त्र से बहुत भिन्न होगा क्योंकि एक बौद्ध, सभ्यता का मौलिक गुण चाहतों की बढ़ौतरी में नहीं बल्कि चरित्र के शुद्धीकरण में देखता है। और चरित्र सर्व प्रथम मनुष्य के श्रम से ही बनता है। श्रम अगर आजादी और सम्मान के वातावरण में किया जाये तो काम करने वाले को और काम के उत्पाद को बराबर आशीर्वाद देता है। भारतीय दार्शनिक और अर्थशास्त्री जे. सी. कुमाराप्पा इस तरह इसी बात को कहते हैं:
"अगर काम के स्वभाव को ठीक से समझा जाये और इस पर अमल किया जाये तो इसका उच्च गुणों से वही रिश्ता होगा जो कि भौतिक शरीर से खाद्यपदार्थों का है। वह उच्च मानव (हायर मॅन) को पोषित और हर्षित करता है और उसे उत्तम कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करता है। वह उसकी आज़ाद इच्छा शक्ति (फ्री विल) को सही दिशा में निर्देशित करता है और उसके अन्दर के पशु को प्रगतिशील दिशाओं में अनुशासित करता है। मनुष्य को अपने मूल्यों को प्रदर्शित करने और अपना व्यक्तित्व विकसित करने के लिए एक अच्छी पार्श्वभूमी देता है।"[6]

अगर कोई इंसान काम पाने में असफल होता है तो उसकी परिस्थिति निराशाजनक होती है, न सिर्फ इस लिए कि उसके पास कोई आमदनी नहीं होती बल्कि इसलिए कि उसके पास अनुशासित श्रम का पोषक और जीवित करने वाला तत्त्व नहीं है जिसकी एवज में कुछ और नहीं हो सकता। एक आधुनिक अर्थशास्त्री अत्यंत जटिल गणित के द्वारा यह समझने की कोशिश कर सकता है कि क्या सम्पूर्ण रोज़गार (फुल एमप्लोयमेंट) अच्छी बात है या क्या अर्थव्यवस्था को पूर्ण-से-कम रोज़गार पर चलाने से मजदूर वर्ग ज्यादा लचीला होगा और वेतन ज्यादा स्थिर रहेंगे, इत्यादी। उसके लिए सफलता का मौलिक मापदण्ड तो सिर्फ किसी निर्धारित समय में उत्पादित किये गए वस्तुओं की कुल मात्रा ही है। "दी अफ्लूएंट सोसाइटी" ("समृद्ध समाज") में प्रा. गौलब्रेथ कहते हैं, "अगर वस्तुओं की सीमांत अत्यावश्यकता (मार्जिनल उर्जेंसी) कम हो, तो आखरी इन्सान या आखरी दस लाख इंसानों को रोज़गार देने की अत्यावश्यकता भी कम होगी।" और फिर से:
"अगर...[आर्थिक] स्थिरता के लिए हम कुछ बेरोजगारी सह सकते हैं- एक ऐसा तथ्य जिसके पूर्ववृत्त बिलकुल रूढिवादी हैं- तो हम बेरोजगारों को वह वस्तुएं देने का खर्च उठा सकते हैं जिनकी उन्हें अपना जीवन-स्तर बनाए रखने के लिए ज़रूरत है।"[7]

बौद्ध नज़रिये से यह तो सत्य को अपने सर पर खडा कर देना है, क्योंकि हम वस्तुओं को इंसानों से ज्यादा महत्त्वपूर्ण मान रहें हैं और उपभोग को सृजनात्मक क्रिया से अधिक महत्व दे रहें हैं। इसका मतलब है मजदूर या श्रमिक के बजाये काम के उत्पाद पर जोर देना, मानवीय के बजाये अमानवीय चीज़ पर जोर देना, आसुरी शक्ति के सामने हार मानना। बौद्ध अर्थ योजना की शुरुआत ही सम्पूर्ण रोज़गार की योजना से होगी ओर इसका प्रमुख उद्येश्य उन सब के लिए रोज़गार होगा जो "बाहरी" नौकरी चाहते हैं; न की रोज़गार या उत्पादन का अधिकतमकरण (मॅक्सिमिजेशन)। महिलाओं को अधिकतर "बाहरी" नौकरी की आवश्यकता नहीं होती और महिलाओं का बड़े पैमाने

पर दफ्तरों में, कारखानों में काम करना आर्थिक असफलता की निशानी समझी जायेगी। खासकर छोटे बच्चों की माएं कारखानों में काम करें और बच्चें आवारा घूमें यह एक बौद्ध अर्थशास्त्री के लिए उतना ही अलाभकारी होगा जितना कि एक आधुनिक अर्थशास्त्री के नज़रिये से एक कुशल मजदूर का सिपाही बनना।

जहाँ एक भौतिकवादी की दिलचस्पी ज्यादातर वस्तुओं में रहती है, एक बौद्ध तो मोक्ष में रूचि रखता है। लेकिन चूँकि बौद्ध धर्म मध्यम मार्ग (मिडल वे) में विश्वास रखता है, इसलिए इसकी भौतिक कल्याण से कोई दुशमनी नहीं है। सम्पत्ति नहीं बल्कि सम्पत्ति के प्रति हमारा लगाव मोक्ष के मार्ग का विघ्न बनता है; आनंददायी चीजों का भोग उठाना नहीं बल्कि उनकी लालसा रखना। तो सादगी और अहिंसा ही बौद्ध अर्थशास्त्र के मुख्य सिद्धान्त हैं। एक अर्थशास्त्री के नज़रिये से बौद्ध जीवन शैली की खास बात है उसके स्वरूप की तर्क संगती- अचंभित करने वाले छोटे-छोटे साधनों से बहुत बडे और संतोषपूर्वक परिणामों तक पहुँचना।

एक आधुनिक अर्थशास्त्री के लिए यह समझ पाना बहुत मुश्किल है। उसे जीवन स्तर (स्टैंडर्ड ऑफ़ लिविंग) को वार्षिक उपभोग से मापने की आदत है, हर वक्त यह मान कर चलते हुए कि ज्यादा उपभोग करने वाला कम उपभोग करने वाले से बेहतर परिस्थिति में है। एक बौद्ध अर्थशास्त्री को यह बात बहुत मूर्ख लगेगी; चूँकि उपभोग मानव कल्याण का महज़ एक साधन है, हमारा लक्ष्य कम से कम उपभोग से ज्यादा से ज्यादा कल्याण पाना होना चाहिऐ। इस प्रकार यदि कपडों का उद्देश्य तापमान के अनुसार हमे आराम में रखना और आकर्षक दिखाई पड़ना है, तो हमारा काम इस लक्ष्य को कम से कम कष्ट से हासिल करना है, यानी, कपडे के कम से कम सालाना नाश से और ऐसे डिजाइनों की मदद से जिन्हें बनाने में जितनी हो सके उतनी कम मेहनत लगे। जितनी मेहनत कम लगेगी उतने ही समय और शक्ति कलात्मक सृजनात्मकता के लिए बचेंगे। मिसाल के तौर पर, आधुनिक पश्चिमी समाज की तरह जटिल सिलाई करवाना बहुत अलाभकारी होगा जबकि उससे कहीं सुन्दर असर बिन सिले कपडे को कुशलतापूर्वक पहनने से हासिल होता हो। यह तो नादानी की हद होगी कि कपडे को ऐसा बनाया जाये कि वह जल्द ही जीर्ण हो जाये और यह असभ्यता की हद कि चीज़ को भद्दा या हलके स्तर का बनाया जाये। जो अभी कपडे के बारे में कहा गया है वह आदमी की हर दूसरी ज़रूरत के लिए बराबर लागू होता है। वस्तुओं का उपभोग या उनका स्वामित्व सिर्फ लक्ष्य तक पहुंचें ले लिए साधन है और निश्चित लक्ष्य को कम से कम साधनों से कैसे हासिल किया जाये यह शास्त्र ही बौद्ध अर्थशास्त्र है।

दूसरी तरफ आधुनिक अर्थशास्त्र उत्पादन के कारकों को, यानी श्रम और पूंजी को, साधन के रूप में ले कर उपभोग को ही आर्थिक गतिविधियों का एकमेव लक्ष्य मानता है। संक्षिप्त में कहा जाये तो, पहला [बौद्ध] इष्टतम उपभोग (आप्टिमल कन्जम्पशन) से मनुष्य के संतोष को अधिकतम करने की कोशिश करता है, तो दूसरा [आधुनिक] इष्टतम उत्पादक काम से अधिकतम उपभोग पाने की कोशिश करता है। यह अब हम आसानी से देख सकते हैं कि एक ऐसी जीवन शैली जो इष्टतम

उपभोग की एक रचना पाने की कोशिश करती है, उसे चलाने के लिए जितना कष्ट करना पड़ेगा उससे कहीं ज़्यादा अधिकतम उपभोग की दौड़ चलाये रखने के लिए करना पड़ेगा। इसलिए हमे यह देख कर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि ज़िंदगी के दबाव और तनाव बर्मा से कहीं अधिक संयुक्त राष्ट्र अमरीका में हैं, इसके बावजूद के श्रम की बचत करने वाले यन्त्र बर्मा से पास अमरीका से बहुत कम हैं।

ज़ाहिर है के सादगी और अहिंसा के बीच गहरा संबंध है। उपभोग का इष्टतम सांचा, जो कि मनुष्य को संतोष का एक उच्च स्तर देता है, लोगों को ज़्यादा दबाव या तनाव बगैर जीने देता है और उन्हें बौद्ध शिक्षा का पहला सबक पूरा करने देता है: "बुरा मत करो, अच्छा करने का प्रयास करो"। चूँकि भौतिक संसाधन सभी जगहों पर सीमित हैं, जो लोग अपनी ज़रूरतों को संसाधनों के कम इस्तेमाल से पूरा करते हैं वे एक दुसरे के खून के प्यासे उस तरह नहीं होंगे जैसे कि वह लोग जो ज़्यादा इस्तेमाल पर निर्भर हैं। और इसी प्रकार से, जो लोग आत्मनिर्भर स्थानीय समुदायों में रहते हैं वे बडे पैमाने पर हिंसा करने के आदी न होंगे जैसे वे लोग हो सकते हैं जिनका अस्तित्व विश्व-व्यापी व्यापार पर निर्भर है।

इसलिए बौद्ध अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से स्थानीय संसाधनों से स्थानीय ज़रूरतों के लिए उत्पादन ही आर्थिक जीवन की तर्कसंगत या उचित शैली है। दूर-दराज़ से आयात पर निर्भर होना और परिणामवश अजनबी और दूर रहने वाले लोगों के लिए [यानी निर्यात के लिए] उत्पादन करना यह आर्थिक दृष्टि से जायज़ नहीं है या सिर्फ विशेष परिस्थितियों में या छोटे पैमाने पर जायज़ हैं। जैसे एक आधुनिक अर्थशास्त्री यह मानेगा कि अगर किसी आदमी को अपने घर से काम की जगह जाने के लिए परिवहन सेवायों पर बहुत ज्यादा खर्च करना पड़ता है, तो यह उच्च जीवन स्तर न हो के दुर्भाग्य की बात है, वैसे ही एक बौद्ध यह मानेगा कि मनुष्य की ज़रूरतों को स्थानीय स्रोतों के बजाये दूर से पूरा किया जाये तो यह सफलता का नहीं बल्कि असफलता का लक्षण है। पहला [यानी आधुनिक अर्थशास्त्री] देश की परिवहन सेवाओं द्वारा ढोए जाने वाले प्रति व्यक्ति मीलों या टनों के बढ़ते आंकडों को आर्थिक प्रगति का सबूत मानता है, तो दूसरा [यानी बौद्ध अर्थशास्त्री] इन्ही आंकडों को उपभोग के सांचे में भारी खराबी का लक्षण मानेगा।

आधुनिक और बौद्ध अर्थशास्त्रों में एक और गौरतलब फर्क है, प्राकृतिक संसाधनों के इस्तेमाल में। राजनीति के मशहूर फ्रांसीसी दार्शनिक, बेरत्रंड दे जौवेनल "पश्चिमी मनुष्य" का वर्णन कुछ ऐसा करते हैं, जो हम आधुनिक अर्थशास्त्री का भी जायज़ वर्णन मान सकते हैं: "वह मनुष्य के परिश्रम के अलावा और किसी चीज़ को खर्च नहीं मानता ; वह कितने खनिज पदार्थ नष्ट करता है या उससे भी बदतर कितने जीवंत पदार्थों को बर्बाद करता है इसकी उसे कोई परवाह नहीं है। उसे यह बात समझ में नहीं आती कि मनुष्य का जीवन कई प्रकार के जीव-जंतुओं से बने परितंत्र (इकोसिस्टेम) का एक अंश है। चूँकि यह दुनिया शहरों में बसे आदमियों के द्वारा शासित है, जो दुसरे इंसानों के अलावा और सारे प्रकार के जीवन से परे हैं, परितंत्र का हिस्सा होने की भावना

अब पनप नहीं सकती। इसका नतीजा यह है कि पानी और पेड़ों जैसे चीज़ें, जिन पर हम अंततः निर्भर हैं, उन के साथ हम कठोरता और नासमझी से सुलूक करते हैं।"[8]

दूसरी तरफ भगवान बुद्ध की शिक्षा न सिर्फ सारे सचेत जीवों (सेंशंत बिईंग) की ओर बल्कि खास तौर से पेड़ों की ओर नम्रता और अहिंसक भाव रखना सिखाती है। भगवान बुद्ध के हर अनुयायी को कुछ सालों में एक बार वृक्षारोपण करना चाहिऐ, और वह पूरी तरह सम्हल जाने तक उसकी देखभाल करनी चाहिऐ। और एक बौद्ध अर्थशास्त्री यह सहजता के साथ दिखला सकता है कि अगर इस नियम को सब मान लें तो किसी भी विदेशी मदद के बगैर असली आर्थिक विकास प्राप्त हो सकता है। दक्षिण-पूर्व एशिया में की (और दुनिया के और कई हिस्सों में की) आर्थिक सडन वृक्षों की लापरवाह और लज्जाजनक उपेक्षा की वजह से ही हुई है।

आधुनिक अर्थशास्त्र नवीकरणीय (रेन्युँबल) और अनवीकरणीय (नॉन-रेन्युँबल) संसाधनों के बीच फर्क नहीं करता, क्यूंकि उसकी पद्धति ही हर चीज़ को पैसे की कीमत देके समान करना और गिनना है। इसलिए अगर हम विविध प्रकार के इंधन लें, जैसे कोयला, तेल, लकडी, या पानी, इन सब में आधुनिक अर्थशास्त्र को एक ही फर्क नज़र आता है और वह है तुल्य यूनिट की कीमत (रिलेटिव कॉस्ट पर इक्विवलेंट यूनिट)। जो सबसे सस्ता हो उसी को हमे चुनना चाहिऐ क्यूंकि किसी और को चुनना तर्कसंगत न होगा, "अलाभकारी" होगा। ज़ाहिर है बौद्ध दृष्टिकोण से यह ठीक नहीं है: अनवीकरणीय इन्धनों (जैसे कोयला या तेल) , और नवीकरणीय इन्धनों (जैसे लकडी या पानी-उर्जा) के बीच जो फर्क है उसे हम ऐसे नज़रंदाज़ नहीं कर सकते। अनवीकरणीय वस्तुओं का तभी इस्तेमाल होना चाहिऐ जब और कोई चारा न हो, और तब भी बहुत सावधानी से और उनके संरक्षण की तरफ ध्यान दे कर। उन्हें लापरवाही से या फिज़ूलखर्ची से इस्तेमाल करना यह हिंसा करने बराबर है, और जब कि पूर्ण अहिंसा इस जग में संभव नहीं है, फिर भी हर मनुष्य का यह कर्तव्य बनता है की वह अपने हर कार्य में अहिंसा के आदर्श की ओर चलने की कोशिश करे।

अगर यूरोप के कला के खजाने अमरीका को अच्छे दामों पर बेच दिए जाएँ तो एक आधुनिक यूरोपी अर्थशास्त्री इसे कोई बहुत बड़ा पराक्रम नहीं समझेगा, वैसे ही एक बौद्ध अर्थशास्त्री यह आग्रह करेगा कि अगर किसी जगह के लोग अपना आर्थिक जीवन अनवीकरणीय इन्धनों पर आधारित करते है तो वे मुफ्तखोरी से जी रहे हैं, आय के बजाये पूंजी पर जी रहे हैं। ऐसी जीवनशैली में कोई स्थायित्व या टिकाव नहीं होगा और इसलिए इसे सिर्फ अल्पकालिक ही होना चाहिए। चूँकि पृथ्वी के अनवीकरणीय इन्धनों के भण्डार बहुत असमान तरीके से वितरित हैं और निश्चित रुप से सीमित हैं, यह बात साफ है की उनका बढ़ता हुआ इस्तेमाल प्रकृति के विरुद्ध हिंसा है, जो निश्चित ही इंसानों के बीच हिंसा का रुप लेगी।

सिर्फ यह एक बात भी बौद्ध देशों के उन लोगों को सोचने का कारण दे सकती है, जो अपनी विरासत के धार्मिक और आत्मिक मूल्यों की कोई कद्र नहीं करते और जो आधुनिक अर्थशास्त्र के भौतिकवाद को जितनी हो सके उतनी तेज़ी से अपनाने की इच्छा रखते हैं। बौद्ध अर्थशास्त्र को

केवल एक बीते वक़्त की याद दिलाने वाला सपना कह कर खारिज करने से पहले उनको शायद यह सोचना चाहिऐ की क्या आधुनिक अर्थशास्त्र के बताये हुए आर्थिक विकास के पथ पर चलके वह उन जगहों तक पहुंच पायेंगे जहाँ वह पहुँचना चाहते हैं। अपनी निडर किताब "दी चैलेन्ज ऑफ मैनस फ्यूचर" ("मानवी भविष्य की चुनौती") में कैलिफोर्निया प्रौद्योगिकी संस्थान (कैलिफोर्निया इन्स्टीट्यूट ऑफ तक्नालजी) के प्रोफ़ हर्रिसन ब्राउन यह मूल्यांकन देते हैं: "तो हम देखते हैं कि जिस तरह से औद्योगिक समाज मूल रुप से अस्थिर है और कृषिक अस्तित्व की ओर फिर मुड़ जाने का आदी है, वैसे ही उसके भीतर की वे परिस्थितियां जो व्यक्तिगत स्वातंत्र्य (इन्डिविझुअल लिबर्टी) प्रदान करती हैं वे भी अस्थिर हैं और सख्त संगठन और सर्वसत्तावादी नियंत्रण को रोक नहीं सकती हैं। बल्कि जब हम औद्योगिक सभ्यता के अस्तित्व को ही चुनौती देने वाली उन मुश्किलों को देखते जिनका हमे पूर्वाभास है, यह कहना मुश्किल हो जाता है के स्थिरता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कैसे सुसंगत बनाया जाये।"[9]

इसे अगर हम दीर्घावधी दृष्टि मान कर छोड़ भी दें, यह तात्कालिक सवाल तो है कि क्या धार्मिक और आत्मिक मूल्यों को नज़रंदाज़ करने वाले इस आधुनिकीकरण के अच्छे परिणाम हो रहे हैं या नहीं। जहाँ तक आम जनता का सवाल है नतीजे तो विनाशकारी लग रहें हैं - ग्रामीण अर्थव्यवस्था का पतन, नगरों और गावों में बढ़ती हुई बेरोजगारी, और शहरों में एक ऐसे मजदूर वर्ग का बढाव जिसके पास न तन का पोषण करने के साधन हैं, और न मन का।

तात्कालिक अनुभव और दीर्घावधी संभावनाओं को मद्देनज़र रखते हुए बौद्ध अर्थशास्त्र का अभ्यास करने की सलाह हम उन लोगों को भी दे सकते हैं जो आर्थिक वृद्धि को आत्मिक या धार्मिक मूल्यों से ज़्यादा महत्वपूर्ण मानते हैं। क्यूंकि सवाल "आधुनिक विकास" और "पारंपारिक निश्चलता" के बीच चुनने का नहीं है। सवाल है विकास का सही पथ, भौतिकवादी लापरवाही और पारंपारिक अटकाव के बीच से "मध्यम मार्ग" ढूँढने का, यानी संक्षिप्त में, यह सवाल है "उचित जीविका" ढूँढने का।

संधर्भ / Endnotes:

[1] *The New Burma* (Economic and Social Board, Government of the Union of Burma, 1954).
[2] Ibid
[3] Ibid
[4] *Wealth of Nations* by Adam Smith
[5] *Art and Swadeshi* by Ananda K. Coomaraswamy (Ganesh & Co., Madras).
[6] *Economy of Permanence* by J. C. Kumarappa (Sarva-Seve Sangh Publication, Rajghat, Kashi, 4th edn., 1958).
[7] *The Affluent Society* by John Kenneth Galbraith (Penguin Books Ltd., 1962).
[8] *A Philosophy of Indian Economic Development* by Richard B. Gregg (Navajivan Publishing House, Ahmedabad, India, 1958).
[9] *The Challenge of Man's Future* by Harrison Brown (The Viking Press, New York, 1954).

"बौद्ध अर्थशास्त्र" यह निबंध सर्व प्रथम गाए विंत (Guy Wint) द्वारा संपादित और अन्थोनी ब्लोंद (Anthony Blond Publishers), लंदन, १९६६ द्वारा प्रकाशित किताब "Asia: A Handbook" में प्रकाशित हुआ था। १९७३ में "Small is Beautiful: Economics As If People Mattered" इस किताब में ई.ऍफ़.शूमाकर द्वारा लिखित अन्य निबंधों सहित जमा किया गया। इस किताब का २७ भाषाओं में अनुवाद हो चुका है, और १९९५ में लंदन टाईम्स लितेररी सुप्लीमेंट ने इसे दुसरे विश्व युद्ध पश्चात लिखित सौ प्रभावशाली किताबों में से एक कहा।

दिसम्बर २००१ में श्रीमती व्रेनी शूमाकर और हार्त्ले ऍंड मार्क्स प्रकाशन (Hartley and Marks Publishers) ने "बौद्ध अर्थशास्त्र" को "शांति का अर्थशास्त्र" (Economics of Peace) नामक पैम्फलेट में शामिल करने की अनुमती दी। यह पैम्फलेट E. F. Schumacher Society, 140 Jug End Road, Great Barrington, MA 01230 USA, (413) 528-1737 से उपलब्ध है। वेबसाईट: www.smallisbeautiful.org.